'भारतीय क्रांति और इसकी समस्याएं' - एक टिप्पणी

... ... वे इतिहास के स्तर से नीचे हैं, वे किसी भी आलोचना के लिए निम्न स्तरीय हैं, लेकिन तब भी वे आलोचना की विषय वस्तु हैं, उस अपराधी की तरह जो मानवता के स्तर से नीचे होता है लेकिन तब भी अपने मृत्युदाता के लिए वह एक विषय वस्तु होता है ... ... अपने आप में यह सोच के लायक विषय वस्तु नहीं है, यह एक ऐसा अस्तित्व है जो उतना ही घृणा करने लायक है जितना उससे घृणा की जाती है। ... ... *-मार्क्स (हेगेल के अधिकार दर्शन की आलोचना)*

इस तरह, क्रांतिकारी सामाजिक जनवाद से बुर्जुआ सामाजिक सुधारवाद की ओर निर्णायक मोड़ की मांग के साथ-साथ मार्क्सवाद की सभी बुनियादी अवधारणाओं की उतनी ही निर्णायक बुर्जुआ आलोचना की मांग भी की गई। यह देखते हुए कि मार्क्सवाद की ऐसी आलोचना काफी अरसे से होती आ रही थी - राजनीतिक मंच से, विश्वविद्यालय की ऊंची कुरसियों से और ढेर सारी पुस्तिकाओं व विद्धतापूर्ण पुस्तकों की शृंखलाओं के जरिये, यह देखते हुए कि पढ़े लिखे वर्गों की पूरी नौजवान पीढ़ी दशकों तक व्यवस्थित ढंग से इस आलोचना पर पाली-पोषी गई है, यह आश्चर्यजनक नहीं है कि सामाजिक जनवाद में "नयी आलोचनात्मक" प्रवृत्ति पूरी तरह बनी बनाई उसी तरह पैदा हो गई जैसे जोव के सिर से मिनर्वा पैदा हो गयी थी। इस नयी प्रवृत्ति की अंतर्वस्तु को विकसित होने और रूप ग्रहण करने की जरूरत नहीं थी, इसे तो बुर्जुआ साहित्य से सशरीर उठाकर समाजवादी साहित्य में स्थानांतरित कर दिया गया। *– लेनिन, क्या करें?*

सामान्य परिषद, भारत की कम्युनिस्ट लीग (माले) ने 2013 में एक पुस्तिका प्रकाशित की थी- 'आइये शुरू से ही शुरू करें'। करीब एक साल बाद इसी की कड़ी में इसने एक और पुस्तिका प्रकाशित की - 'भारतीय क्रांति और इसकी समस्याएं'। हमने 'लाल सलाम' के अंक -28 (जनवरी, 2014) में पहली पुस्तिका की एक आलोचना प्रस्तुत की थी। इस आलोचना का शीर्षक था -'कहां से शुरू न करें'। इस आलोचना में हमने इस बात को शुरू में ही रेखांकित करते हुए कि 'अपनी गुणवत्ता की दृष्टि से यह इस लायक नहीं है कि इसकी चर्चा की जाये लेकिन तब भी इसमें कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के लिए जो लाइन प्रस्तावित की गई है उसकी चीर-फाड़ जरूरी है'। अंत में यह कहा था कि 'इस "निबंध" के जारी करने के समय तक आते-आते पहले का कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन राजनीतिक और सांगठनिक तौर पर विसर्जित हो चुका है'। साथ ही यह भी कि 'इसने इस "निबंध" के रूप में खुद ही अपना शिलालेख तैयार कर लिया है'।

उस आलोचना के बाद इस नयी पुस्तिका की आलोचना करने की कोई जरूरत नहीं थी क्योंकि दोनों की सारवस्तु एक ही है। पर तब भी इस वजह से इस नयी पुस्तिका पर कुछ टिप्पणियां करना जरूरी हो जाता है कि इसमें विचारधारा और राजनीति के बारे में कुछ ऐसी बातें की गयी हैं जो बेहद आगे चली गयी हैं। एक तरह से कहा जाये तो सारी हदें तोड़ दी हैं।

क. विचारधारा

स्टालिन कालीन सोवियत समाजवाद के बारे में इस नयी पुस्तिका में इस तरह की बातें की गई हैं :

"... ... ऐसे शासन में, जहां जनवाद न हो और तानाशाही हो, बहुत से लोग असहमति के बावजूद चुप रहना श्रेयस्कर समझते हैं। ... ... " (भारतीय क्रांति और इसकी समस्याएं, भाकली (माले), अगस्त-2014,पृष्ठ-17)

"... ... धीरे-धीरे सर्वहारा की तानाशाही पार्टी की तानाशाही बन गई और पार्टी की तानाशाही मुट्ठीभर नेतृत्व की तानाशाही बन गई। लोकतंत्र रोता और कलपता रहा लेकिन किसी ने इसकी आवाज नहीं सुनी।" (वही, पृष्ठ-18)

" ... ... इस तरह, समता की जगह विषमता बढ़ने लगी और लोकतंत्र का गला घुंट गया। पार्टी अब पार्टी सदस्यों की हो गई और जनता की रहनुमा नहीं रह गई। पार्टी में भी मुट्ठी-भर शीर्ष पर बैठे लोग तानाशाह बन बैठे। ... ... " (वही, प्रष्ठ-19)

"इस सिद्धान्त के चलते जनता पर और मजदूरों एवं किसानों पर कहर बरपा हुआ। इस सिद्धान्त ने हजारों विच्युतियों को भी जन्म दिया। जनवाद के अभाव और उत्पादक शक्तियों को बढ़ावा देने के सिद्धान्त ने **एक ऐसे समाज का निर्माण किया जो वस्तुतः पूंजीवादी था।** ... ... इस प्रकार मेहनतकश जनता पर कहर बरपा होता गया और उसका दमन बढ़ता गया।" (वही, पृष्ठ-20, जोर हमारा)

" ... ... स्टालिन ने लेनिन की एक थीसिस का सहारा लेकर अपनी थीसिस प्रस्तुत की कि एक देश में समाजवाद का निर्माण हो सकता है। ... ... रूस में समाजवाद के निर्माण के बारे में लेनिन की थीसिस का सहारा तो लिया गया लेकिन इससे राष्ट्रवादी रुझानें पैदा हुईं, जो आगे चलकर प्रवृत्ति बन गई और **उससे भी आगे चलकर यह प्रवृत्ति कार्यदिशा बन गई।** कुल मिलाकर कहा जाये तो स्टालिन में राष्ट्रवाद के तत्व दिखाई देने लगे। ... ... " (वहीं, पृष्ठ-21, जोर हमारा)

स्टालिन, स्टालिन कालीन सोवियत पार्टी और सोवियत समाजवाद के बारे में ये बातें बहुत जानी-पहचानी हैं। ये बातें पहले-पहले कब कही गयी थीं? 1930 के दशक में। इनको कहने वाला कौन था? लियोन ट्राट्स्की। (यह ट्राट्स्की ही था जिसने 1904 में

लेनिनवादी पार्टी अवधारणा पर यह आरोप लगाया था कि इस अवधारणा से बनी पार्टी अंततः सर्वहारा वर्ग पर तानाशाही वाली पार्टी बन जायेगी, पार्टी में केन्द्रीय समिति की तानाशाही कायम हो जायेगी और केन्द्रीय समिति में एक व्यक्ति की) तब से अब तक न केवल ट्राट्स्कीपंथियों द्वारा बल्कि अन्य संशोधनवादियों द्वारा तथा बुर्जुआ बुद्धिजीवियों द्वारा यह आरोप लाखों बार दुहराया जा चुका है। इन्हीं बातों को सार रूप में ख्रुश्चोव ने 1956 के अपने कुख्यात भाषण में दुहराया।

ट्राट्स्की-ख्रुश्चोव द्वारा कही गई इन बातों को जिन्हें माओ ने दृढ़तापूर्वक न केवल ठुकरा दिया था बल्कि जिनके खिलाफ संघर्ष चलाया था, अब विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन के नये सार-संकलन के तौर पर पेश करने का क्या मतलब हो सकता है? इससे किसे फायदा होगा?

यहां हम इन बातों की सार वस्तु पर, इनमें निहित झूठ और कुत्सा प्रचार पर नहीं जा रहे हैं जिन्हें, जैसा कि पहले कहा गया है बुर्जुआ और संशोधनवादी लम्बे समय से प्रचारित करते रहे हैं और अभी भी प्रचारित कर रहे हैं। इस मामले में, जहां तक मसले की सार वस्तु का संबंध है, हम **महान बहस** की दूसरी टिप्पणी पर दृढ़तापूर्वक खड़े हैं।

यहां असल मामला यह है कि इन बातों को बुर्जुआ संशोधनवादी कुत्सा-प्रचार कह कर खारिज करने वाले लोग विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन के नये सार-संकलन के तौर पर आज क्यों खुद प्रचारित करने लग गये हैं? क्या इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि इन्होंने मार्क्सवाद से पूर्णतया नाता तोड़ने की ओर अपने कदम बढ़ा दिये हैं? अब मामला विचारधारात्मक भटकाव का नहीं बल्कि संशोधनवाद का है? आखिर कौन ट्राट्स्की-ख्रुश्चोव की संगत में बैठना चाहेगा और कौन स्टालिनकालीन सोवियत समाजवाद को 'वस्तुतः पूंजीवाद' कहेगा? कौन बार-बार कहेगा स्टालिन कालीन सोवियत संघ में मजदूरों-किसानों पर, मेहनतकश जनता पर कहर बरपा?

क्यूबा को आज भी समाजवादी देश (अब उत्तरी कोरिया को भी) कहने वालों की अंततः यही परिणति होनी थी। यहां यह भी गौरतलब है कि इस पुस्तिका में बार-बार 1980 के दशक के अंत में समाजवाद के खत्म होने की बात कही गई है। धन्य हैं यह विचारधारात्मक प्रगति! ट्राट्स्की-ख्रुश्चोव-ब्रेझनेव का यह संश्लेषण मुबारक हो!!

ख. राजनीति

"आज जिस तरह का समाज बना है वह 20-25 करोड़ लोगों का ही भारत है, एक अरब से ज्यादा लोग आज भी सम्पत्ति से वंचित हैं या उनके पास बहुत कम सम्पत्ति है। उनके पास जमीनें नहीं हैं, उनके पास पूंजी नहीं है, वे घोर निर्भरता में अभिशप्त जीवन जीते हैं और उनके हाथों-पैरों में तरह-तरह की हथकड़ी-बेड़ी लगी हुयी है। उनका मस्तिष्क सृजन के करिश्मों के लिए मुक्त नहीं है।" (वही, पृष्ठ-39)

"भारत के गावों का और दलित, आदिवासी, पिछड़ी तथा अन्य पिछड़ी जातियों के सम्पत्ति-विहीन हिस्सों का उत्थान किये बिना समृद्ध भारत का निर्माण नहीं किया जा सकता।" (वही, पृष्ठ-40)

"... ... यदि आज भी उग्र भूमि सुधार कर दिया जाये तो देश की खुशहाली पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।" (वही, पृष्ठ-40)

"भारत में आज भी उग्र भूमि सुधार हमारी कार्यसूची में सर्वोपरि है। 1990-91 के बाद जमीन के मामले मे उल्टी गंगा बह रही है और जमीनों तथा कृषि का निगमीकरण प्रारंभ हो गया है। इस नयी परिस्थिति के मद्देनजर भूमि सुधार और भी जरूरी कार्यभार बन गया है। यह भूमि सुधार एक ऐसी क्रांतिकारी पार्टी के नेतृत्व में ही संभव है, जो समाजवादी क्रांति सम्पन्न करे और इसके साथ ही जनवाद के बचे हुए कार्यभार को भी पूरा करे।

"यहीं पर हम अपनी एक बड़ी गलती की चर्चा करना चाहेंगे। लाल तारा, अंक-2 (1983) में हमने सामंतवाद के मजबूत अवशेषों की चर्चा तो की है लेकिन सामंतवाद को बुनियादी अंतर्विरोध नहीं बताया है। हम भूल-सुधार करते हुए सामंतवाद को एक बुनियादी अंतर्विरोध के रूप में चिह्नित करते हैं। भारत में जातियों की समस्या सामन्तवाद को जटिल से जटिलतर बना देती है। ... ... दलितों, आदिवासियों और पिछड़ी-अति पिछड़ी जातियों के भूमिहीनों को जमीन दिये बिना भारत की किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। ... ..." (वही, पृष्ठ-40-41)

"क्रांति मुख्य रूप से राज्यसत्ता पर कब्जा करने के लिए सम्पन्न की जाती है। यदि वर्तमान में राजसत्ता पूंजीपतियों के हाथ में है तो भारत में समाजवादी क्रांति ही होगी। " (वही, पृष्ठ-41)

" ... ... आबादी के दबाव के चलते आज भूस्वामियों के परिवार टूट-बिखर गये हैं और बहुतों के पास अब नाममात्र की ही जमीन बची है। फिर भी वे खेतों में काम नहीं करते और अपनी आजीविका के लिए नौकरी, व्यापार और अन्य साधनों पर निर्भर हैं। आज इसी सामंतवाद के खिलाफ संघर्ष है। ... " (वही, पृष्ठ- 42-43)

" ... ... खेती योग्य पूरी जमीन, परती जमीन और बेकार पड़ी कृषि योग्य जमीन को खेती करने वाले सभी ग्रामीण परिवारों में बराबर-बराबर बांट दिया जाये तो हर ग्रामीण परिवार को औसत 3.68 एकड़ जमीन उपलब्ध हो जायेगी। ... ..." (वही, पृष्ठ-43)

उपरोक्त में जिस समाजवादी क्रांति की बात की गयी है वह समाजवादी क्रांति कतई नहीं है। यह जनवादी या नव जनवादी क्रांति भी नहीं है। यह यदि कुछ है तो पेटी बुर्जुआ समाजवाद का नमूना है। यह दलित-पिछड़े पेटी बुर्जुआ का समाजवाद का सपना है। इसका वैज्ञानिक समाजवाद से कोई लेना-देना नहीं है।

जरा इस तर्क पर सोचिये-'यदि वर्तमान में राजसत्ता पूंजीपतियों के हाथ में है तो भारत में समाजवादी क्रांति ही होगी'। अब

स्वयं इस पुस्तिका के अनुसार भारत में 1947 से ही राजसत्ता पूंजीपति वर्ग के हाथ में है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत में 1947 से ही समाजवादी क्रांति की मंजिल है। लेकिन यह तो लाल तारा 2 या 3 की लाइन नहीं है। यह एस.यू.सी.आई. और ट्राट्स्कीपंथियों की लाइन है। एस.यू.सी.आई. और ट्राट्स्कीपंथियों के राजनीतिक चरित्र से हम सभी वाकिफ हैं।

यहां प्रस्तुत शुरू के उद्धरणों में भारत की समृद्धि, देश की खुशहाली की बात की गई है। यह किसका सपना है? मार्क्सवाद के हिसाब से तो पूंजीवाद में देश की खुशहाली के साथ मजदूर वर्ग की बदहाली बढ़ती चली जाती है। (देखें मार्क्स द्वारा लिखित अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ का घोषणापत्र)। ऐसे में यह खुशहाली किसे भाती है? स्वभावतः ही पूंजीपति वर्ग को या फिर प्रवंचना के शिकार पेटी बुर्जुआ को। वही इस खुशहाली की जोर-शोर से प्रशंसा करता है।

आगे चलें। पूंजीवादी समाज में कौन यह सोचता है कि संपत्ति केवल कुछ लोगों के पास नहीं होगी बल्कि सभी लोगों के पास होगी, कि देश की समृद्धि के लिए सभी के पास सम्पत्ति होनी चाहिए? केवल लाइलाज पेटी बुर्जुआ ही ऐसा सोचता है। बुर्जुआ जानता है कि निजी सम्पत्ति से वंचित ही उसके मजदूर बनते हैं और पूंजीवाद के विकास के साथ ऐसे सम्पत्तिविहीन मजदूरों की संख्या बढ़ती जाती है। पूंजीवादी विकास का यह अनिवार्य नियम है। इसका उलटा सोचना प्रतिक्रियावादी सोच का नमूना पेश करना है। केवल पेटी बुर्जुआ ही ऐसा सोचता है। वही सोचता है कि 'सृजन के करिश्मों' के लिए छोटी सम्पत्ति जरूरी है। पूंजीवादी सृजन का करिश्मा किसी अन्य तरह से, पूंजीवादी श्रम विभाजन और सम्पत्तिविहीन मजदूरों के जरिये सम्पन्न होता है।

अब आयें अन्तिम सैद्धान्तिक मुद्दे पर जो लाल तारा-2 की स्पष्ट मार्क्सवादी लाइन के ठीक विरोध में है। यहां कहा गया है कि सामन्तवाद भारत में एक बुनियादी अंतर्विरोध है। यह सामंतवाद छोटा सामंतवाद है और इसका समाधान है उग्र भूमि सुधार यानी जमीनों का बंटवारा। यह और भी ज्यादा पेटी बुर्जुआ समाजवाद का नमूना है।

पुराने समय में कहा जाता था कि जनवादी क्रांति मूलतः किसान या कृषि क्रांति है और यह सामंतों की जमीनें छीनने और उन्हें जोतने वालों के बीच बांटने के जरिये सम्पन्न की जाती थी। यह क्रांति इस तथ्य पर आधारित होती थी कि जमीनों और खेती में एक खास सम्बन्ध होते थे। जो सामन्त जमीनों के मालिक होते थे वे स्वयं उन पर खेती नहीं करते थे। इसके उलट जो किसान खेती करते थे वे जमीनों के मालिक नहीं होते थे। वे सामन्तों से जमीनें लगान पर या बटाई पर लेते थे। इसी से जनवादी क्रांति का नारा निकलता था-जमीन जोतने वालों की। सामन्तों और किसानों के इस निश्चित सम्बन्ध पर ही गावों की सामंती व्यवस्था टिकी होती थी। इसीलिए सामंती व्यवस्था को समाप्त करने के लिए, जनवादी क्रांति सम्पन्न करने के लिए इस संबंध को समाप्त करना जरूरी होता था।

अब यदि गाँवों में, खेती में ये संबंध नहीं हैं तो इन्हें सामंती संबंध नहीं कहा जा सकता और सामंतवाद के बुनियादी अंतर्विरोध की बात नहीं की जा सकती। यह पुस्तिका यह दावा नहीं करती कि ज्यादातर जमीनों के मालिक सामंत है और किसान उनसे लगान या किराये पर जमीन लेकर खेती करते हैं। (सरकारी आँक ड़ों के अनुसार ऐसी जमीन महज दस प्रतिशत है और उसमें भी पूंजीवादी किरायेदारी व उलटी किरायेदारी शामिल है) यह केवल यह कहती है कि जमीन का वितरण असमान है और पिछले सालों में निगमीकरण इत्यादि के कारण यह और असमान होता जा रहा है। लेकिन जमीन का असमान वितरण तथा बहुत सारे लोगों का भूमिहीन होना सामंतवाद का द्योतक कैसे हो गया? यह पूंजीवाद का द्योतक क्यों नहीं है?

यह पुस्तिका केवल जमीन के असमान वितरण की बात करती है। यह न तो जमीन में विद्यमान सम्बन्धों की बात करती है और न ही खेती के उत्पादन सम्बन्धों की। क्या खेती के उत्पादन संबंध पूंजीवादी हैं या सामंती? खेती में उत्पादन प्रणाली सामंती है या पूंजीवादी?

जैसा कि हमने पहले कहा है यह पुस्तिका लाल तारा-2 की ठीक उल्टी बात करती है। लाल तारा-2 में भारतीय क्रांति के संदर्भ में सारी बातें केवल दो चीजों पर केन्द्रित है : एक, भारत के पूंजीपति वर्ग की आजादी पर तथा दूसरा, भारत की कृषि के पूंजीवादीकरण पर। कृषि के मामले में तो विस्तार से चर्चा की गई है कि कृषि में विद्यमान संबंधों को, उसके पूंजीवादीकरण को देखने की सही मार्क्सवादी पद्धति क्या है।

आज उस सबको भूलकर केवल जमीन के असमान वितरण पर केन्द्रित करना और उसके आधार पर सामंतवाद को एक बुनियादी अंतर्विरोध बताना एकदम ही मार्क्सवाद विरोधी बात है। मार्क्सवाद विरोधी सारसंग्रहवाद की इंतहा यह है कि सामंतवाद को बुनियादी अंतर्विरोध बताते हुए भी समाजवादी क्रांति की बात की जाती है। यदि गांवों व खेती में सामंतवाद बुनियादी अंतर्विरोध है तो वह साथ ही पूंजीवादी बुनियादी अंतर्विरोध नहीं हो सकता। अब गावों में देश की दो तिहाई आबादी रहती है तथा देश की आधी आबादी खेती में काम करती है। यदि देश की आधी आबादी सामंती संबंधों में जी रही है तो इससे मुक्ति ही क्रांति का प्रमुख कार्यभार बन जाता है। और जब साम्राज्यवाद हावी हो रहा हो तथा पूंजीपति वर्ग उसका शत्रु सहयोगी बन रहा हो तो साम्राज्यवाद, शत्रु-सहयोगी पूंजीपति वर्ग व सामंतवाद का यह गठजोड़ स्वतः ही जनवादी क्रांति का कार्यभार उपस्थित कर देता है। तब क्रांति समाजवादी क्रांति कहां रह जाती है? लेकिन मार्क्सवाद विरोधी सार-संग्रहवादियों से इतनी सुसंगतता की उम्मीद नहीं की जा सकती।

कुल मिलाकर यह कि इस पुस्तिका के प्रकाशन के साथ इसके लेखकों ने मार्क्सवाद से अपनी दूरी को और बढ़ाया है। हमने पहली पुस्तिका के संदर्भ में कहा था कि यह संगठन राजनीतिक और सांगठनिक तौर पर विसर्जित हो चुका है। तब हम सारतत्व की बात कर रहे थे। अब इन्होंने सारतत्व से आगे बढ़कर रूप में भी मार्क्सवाद को तिलांजलि देनी शुरू कर दी है। अब अल्लाह ही इनका मालिक है।

■■■